Dr. Vandana Suman
Associate Professor
Dept. of Philosophy
H. D. Jain College, Ara

B. A. Part - 1 (Hons)
Paper - I
Indian Philosophy

1

" Jain:

(जैन : स्यादवाद)

'स्याद्वाद' अथवा 'सप्तभंगी-नय' जैन दर्शन का सबसे अधिक महत्वपूर्ण एवं विशिष्ट विचार है। स्याद्वाद वह सिद्धान्त है जो मानता है कि मनुष्य के साधारण ज्ञान आंशिक होते हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार जबतक मनुष्य शरीर के बन्धन में है और जबतक उसके ज्ञान प्राप्त करने के साधन सीमित और अपूर्ण हैं, उसके ज्ञानात्मक निर्णयों में पूर्ण यथार्थता नहीं आ सकती। उसके सभी निर्णय किसी विशेष दृष्टिकोण से वस्तु के किसी पहलू के सम्बन्ध में ही ज्ञान देंगे। क्योंकि साधारण मनुष्य किसी वस्तु को किसी समय एक ही दृष्टि से देख सकता है। इसलिए वह उस वस्तु का एक ही धर्म जान सकता है। वस्तुओं के इस आंशिक ज्ञान को जैन दार्शनिक 'नय' कहते हैं।

इस आंशिक ज्ञान के आधार पर जो परामर्श होता है उसकी सत्यता उसके 'नय' पर निर्भर करती है। अर्थात जिस दृष्टि तथा जिस विचार से किसी विषय का परामर्श होता है उसकी सत्यता उसी दृष्टि तथा उसी विचार पर निर्भर करती है।

हमारे मतभेद का प्रमुख कारण यह है कि हम उपर्युक्त सिद्धान्त को भूल जाते हैं और अपने विचारों को सर्वथा सत्य मानने लगते हैं

और अपने विचारों को सर्वथा सत्य मानने लगते हैं। जैसे मान लिया जाए कि कुछ अंधे हाथी का आकार जानना चाहते हैं। कोई

LIC

उसका पैर, कोई कान, कोई पूँछ तथा कोई उसकी सूँड़ पकड़ता है और अपने-अपने ढंग से हाथी के भिन्न-भिन्न अंगों को छूकर हाथी का अलग-अलग वर्णन देता है। इसका फल यह होता है कि इन अंधों में हाथी के आकार के संबंध में ऐसा मतभेद हो जाता है, प्रत्येक अंधा सोचता है कि उसी का ज्ञान ठीक है। परन्तु इन्हें यह विश्वास दिला दिया जाय कि प्रत्येक का ज्ञान आंशिक रूप से सत्य है तो शायद यह मतभेद समाप्त हो जायगा।

ठीक इसी प्रकार का मतभेद दर्शन के क्षेत्र में भी पाया जाता है। प्रत्येक दार्शनिक अपने ही विचार को सत्य समझता है वह दूसरे के विचारों पर ध्यान नहीं देता है। यही कारण है कि इनमें घोर विरोध पाया जाता है। जैसे, एक दर्शन (गीता) अगर आत्मा को शाश्वत मानता है तो दूसरा दर्शन (चार्वाक) इसे अशाश्वत बताता है। पर जैन दर्शन में हम यह दोष नहीं पाते हैं, क्योंकि यह दर्शन किसी एकही दृष्टिकोण को पूर्णतः सत्य नहीं मानता है। यह किसी एक दृष्टिकोण को आंशिक रूप से ही सत्य मानता है।

जैन इस बात का आग्रह करते हैं कि प्रत्येक नय के प्रारंभ में 'स्यात्' शब्द का प्रयोग करना चाहिए। यदि

हम देखते हैं कि गुलाब लाल है, तो हमें कहना चाहिए 'स्यात् गुलाब लाल है।' कहानी के अंधों के साथ हम देखते हैं अपनी आड़ कहते कि 'स्यात् हाथी खम्भे जैसा है', तो इन अंधों के मध्य भी कोई विरोध नहीं होता। आ हालात हो तो सभी अन्धों की बातें अपने-अपने दृष्टि से यथार्थ रहतीं और पूर्ण सत्य के आंशिक। अतः विचारों को दोष-रहित बनाने के लिए उनके पहले 'स्यात्' शब्द का जोड़ना परम आवश्यक है।

अमेरिका के Neo-Realists का भी यही विचार है कि किसी एक ही विचार को पूर्णतः सत्य मानना दोषपूर्ण है। जिसे fallacy of exclusive particularity के नाम से पुकारते हैं। जैन-दर्शन इस दृष्टि से दोष-मुक्त है।

शिलर के अनुसार भी कोई विचार किसी खास दृष्टिकोण से ही सत्य होता है, जैसे Circular square इस दृष्टि से गलत मालूम पड़ता है क्योंकि square (वर्ग) कभी वृत्ताकार नहीं होता है, किन्तु एक दृष्टिकोण से यह सही भी है, क्योंकि शहर के मकान के आगे खुली जमीन को square भी कहते हैं। इस दृष्टि से square का वृत्ताकार होना कोई अस्वाभाविक नहीं है। इसी प्रकार 2+2=4

LIC

दोनों एक दूसरे से अलग हैं। पर इन्हें मिला दिया जाए तो चार भेद नहीं बनते हैं बल्कि एक ही भेद बन जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि दोनों में और व्यवहार की दृष्टि से अवश्य ही समानता वर्तमान है किन्तु दोनों में बहुत बड़ा विभेद भी है। जैन वस्तुवादी है लेकिन बौद्धों का झुकाव विज्ञानवाद की ओर है। जैन यह नहीं मानते कि हमारे विचार परामर्श मात्र के प्रत्यय मात्र हैं बल्कि उनके अनुसार तो विचार या परामर्श के द्वारा बाह्य वस्तुओं के वास्तविक धर्म को जाना जाता है। अतः उनके अनुसार कोई प्रत्यय तभी सत्य हो सकता है जब वह बाह्य वस्तुओं के धर्म को व्यक्त करे किन्तु पक्के व्यवहारवादी इस विचार को नहीं मानते हैं।

जैन स्याद्वाद की तुलना कभी-कभी पाश्चात्य सापेक्षवाद से भी की जाती है। सापेक्षवाद से भी की जाती है। सापेक्षवाद दो प्रकार का होता है विज्ञानवादी और वस्तुवादी। विज्ञानवादी सापेक्षवाद के प्रवर्तक प्रोटागोरस, बर्कले तथा शिलर आदि हैं। वस्तुवादी सापेक्षवाद के प्रवर्तक व्हाइटहेड, ह्वाइटहेड, बूडिन आदि हैं। जैनमत को, यदि सापेक्षवाद माना जाय तो वह वस्तुवादी सापेक्षवाद

होगा। क्योंकि जैन दार्शनिक मानते हैं कि यद्यपि ज्ञान सापेक्ष है, फिर भी यह केवल मनु पर निर्भर नहीं है, बल्कि वस्तुओं के धर्मों पर भी निर्भर है।

स्याद्वादी होने के कारण जैनमत के संबंध में एक भ्रम उत्पन्न हो गया है। इसे कुछ लोग संशयवाद या अज्ञेयवाद मानते हैं। इसकी तुलना ग्रीक की पिरो के संशयवाद से की जाती है, क्योंकि पिरो के अनुसार भी वाक्यों के पहले 'शायद' का प्रयोग आवश्यक समझा जाता था किन्तु यथार्थ में जैन संशयवादी नहीं है। स्यात शब्द के प्रयोग से किसी वाक्य की उसकी असत्यता या संदिग्धता का बोध नहीं कराया जाता है, बल्कि उसकी सापेक्षता का संकेत किया जाता है। परिस्थिति तथा विचार-प्रसंग के अनुसार परामर्श अवश्य ही सत्य होता है — इसे जैन दार्शनिक स्पष्ट रूप से स्वीकार करते हैं। अतः स्याद्वाद को संशयवाद समझना ठीक नहीं है।

स्याद्वाद का अर्थ सम्भावना नहीं है, क्योंकि स्याद्वाद न तो संशयवाद है और न ही अज्ञेयवाद वास्तव में स्याद्वाद ज्ञान की सापेक्षता का सिद्धान्त है। प्रत्येक वस्तु अपने रूप, द्रव्य क्षेत्र और काल के विचार से ही सत्ता है न कि अन्य वस्तु के रूप द्रव्य क्षेत्र और काल के विचार से। अतः प्रत्येक वस्तु का

ज्ञान सापेक्ष हैं। जैन का ज्ञानमीमांसावाद वास्तववादी है क्योंकि वह मानता है कि वस्तुओं के ज्ञान को बोध करने वाले पर निर्भर नहीं करते बल्कि उनकी स्वतंत्र सत्ता है।

उपर्युक्त स्वतंत्र सत्ता है, पर हम कह सकते हैं कि स्याद्-वाद वह सिद्धान्त है जो मानता है कि मनुष्य के साधारण ज्ञान आंशिक होते हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार जबतक मनुष्य शरीर के बन्धन में है और जबतक उसके ज्ञान प्राप्त करने के साधन सीमित और अपूर्ण हैं उसके ज्ञानात्मक निर्णयों में यथार्थता नहीं आ सकती है उसके सभी निर्णय किसी विशेष दृष्टिकोण से वस्तु के किसी पक्ष के सम्बन्ध में ही ज्ञान देंगे।

स्याद्वाद का विकसित रूप 'सप्तभंगी-नय' कहलाता है, जिनकी संख्या सात है, इनमें से प्रत्येक के साथ जैन दार्शनिक 'स्यात' शब्द जोड़ते हैं। स्यात शब्द को जोड़कर वे यह दिखलाना चाहते हैं कि निर्णय (कुछ) निरपेक्ष रूप से सत्य नहीं होता है।

तर्कशास्त्र में साधारणत: दो प्रकार के निर्णय होते हैं — भावात्मक और अभावात्मक। वाक्य के उद्देश्य तथा विधेय के बीच यदि भावात्मक सम्बन्ध रहता है, तो वाक्य भावात्मक समझा जाता है, पर यदि उद्देश्य और विधेय में अभावात्मक

LIC
भारतीय जीवन बीमा निगम

सम्बन्ध रहता है तो वाक्य अभावात्मक समझा जाता है। किन्तु जैन दर्शन निर्णय के सात भेद मानता है। उपर्युक्त दो भेद भी इसके अंतर्गत आ जाते हैं। सात प्रकार के नय इसप्रकार हैं ——

1. स्यात अस्ति- यह प्रथम परामर्श है। यदि यह कहा जाय कि 'स्यात दीवाल लाल है', तो इसका अर्थ यह होगा कि किसी विशेष देश, काल और प्रसंग में 'दीवाल लाल है।' यह भावात्मक वाक्य है।

2. स्यात नास्ति :— यदि यह कहा जाय कि स्यात टेबल इस कमरे के अन्दर नहीं है। इसका यह अर्थ हुआ कि इस काल में देखने-वाले को टेबल दिखाई नहीं पड़ता है। यह अभावात्मक परामर्श है।

3. स्यात अस्ति च नास्ति च — एक ही व्यक्ति बच्चा है, जवान है, बूढ़ा है, वह पति है, पिता है, भाई है, ये सभी गुण एक ही व्यक्ति में है, जो काल विशेष पर निर्भर करता है।

4. स्यात अवक्तव्यम् - मनुष्य लम्बे भी होते हैं नाटे भी होते हैं परन्तु यदि कोई पूछे कि मनुष्य की वास्तविक ऊँचाई क्या है, तो उचित उत्तर होगा कि मनुष्य की वास्तविक ऊँचाई का वर्णन नहीं किया जा सकता। किसी विशेष काल में किसी विशेष मनुष्य की ऊँचाई हम बता सकते हैं, किन्तु

LIC

मनुष्य जाति के निर्माण में कुछ नहीं कहा जा सकता।

दार्शनिक दृष्टि से स्याद्वाद का योगदान बहुत महत्वपूर्ण है। (1) सबसे पहले तो इससे यह स्पष्ट होता है कि भिन्न भिन्न अवस्थाओं या दृष्टियों के अनुसार ही किसी वस्तु का कोई पृथक पृथक रूप अथवा वर्णन हो सकता है। इस प्रकार पृथक पृथक रूप क्रमिक वर्णन ग्रहण करके साथ परस्पर विरोधी धर्मों के द्वारा किसी वस्तु का हम युगपत वर्णन करना चाहें तो प्रयत्न सफल नहीं होता और हमें बाध्य होकर कहना पड़ता है कि वह अवक्तव्य इस दृष्टि से अवक्तव्य है।

(2) दूसरी बात यह है कि सब समय किसी प्रश्न का सीधा कोई तथ्यात्मक या नकारात्मक उत्तर दे देना ही बुद्धिमता नहीं है। बुद्धिमान लोगों के लिए यह समझना भी आवश्यक है कि ऐसे अनेक प्रश्न हैं। जिनका कोई उत्तर नहीं दिया जा सकता। (3) तीसरी बात यह है कि जैन तार्किक विरोध को एक दोष मानते हैं। अर्थात वे यह समझते हैं कि परस्पर-विरोधी धर्म एक साथ किसी वस्तु के लिए प्रयुक्त नहीं हो सकते।

5. स्यात् अस्ति च अवक्तव्यम् च:- वस्तु एक ही समय में हो सकती है और

फिर भी अव्यक्त रह सकती है।
किसी विशेष दृष्टि से कलम को
काला कहा जा सकता है। परन्तु
जब दृष्टि का स्पष्ट संकेत न हो
तो कलम के रंग का वर्णन असम्भव
हो जाता है। यह पहले और चौथे
परामर्श को जोड़ने से बनता है।

6. स्यात नास्ति च अवक्तव्यम च — दूसरे और चौथे
वाक्यों को मिलने से यह वाक्य बनता है।
जैसे हम कहते हैं कि — " यह बालक
अभी तो लम्बा नहीं है परन्तु इसकी
सबकी लम्बाई के विषय में संगत
कुछ नहीं कहा जा सकता।

7. स्यात अस्ति च
नास्ति च अवक्तव्यम च — " आम
आम हरा है और हरा नहीं भी है और
स्यात उसके रंग के विषय में कुछ
नहीं कहा जा सकता।" जब आम
को हरा कहा गया तो कच्चे आम को
ध्यान में रखा गया। वह आम पक
गया तो पीला हो गया हरा नहीं रहा
वाक्य के दूसरे भाग में उसके पीलापन
को ध्यान में रखकर कहा गया है
फिर भी इस आम का सामान्य रंग
कुछ नहीं है। रंग का प्रश्न तभी
उठेगा, जब इस आम को एक
विशेष काल में रखकर सोचा जाय।
यदि सामान्य रंग की बात हो तो
स्यात इस विषय में कुछ नहीं
कहा जा सकता। निष्कर्षतः हम कह

सकते हैं कि वस्तुओं के धर्म तो अनन्त हैं, परन्तु उनके धर्म सम्बन्धी वाक्य केवल सात ही हैं। जिन्हें जैन-दर्शन पूर्ण मानता है।

जैन दर्शन के स्याद्वाद पर विद्वानों ने आक्षेप किये हैं जो निम्न हैं — (1) बौद्ध और वेदान्तियों ने स्याद्वाद को विरोधात्मक सिद्धान्त कहा है। उनके अनुसार एक ही वस्तु एक ही समय में है और नहीं नहीं हो सकती। श्री शंकराचार्य का कहना है कि स्याद्वाद 'अनिश्चितता' का सूचक है। किसी वस्तु को सत और असत दोनों कहना तो अनिश्चतता मात्र ही है क्योंकि इससे वस्तु के स्वरूप का निश्चय नहीं हो पाता। इससे हमें प्रवृत्ति भी नहीं होती। जैनों ने विरोधात्मक गुणों का एक ही साथ समन्वय किया है। अतः शंकराचार्य ने स्याद्वाद को पागलों का प्रलाप कहा है।

(2) स्याद्वाद के अनुसार हमारे सभी ज्ञान सापेक्ष और आंशिक हैं। जैन केवल सापेक्ष को मानते हैं निरपेक्ष को नहीं। परन्तु सभी सापेक्ष निरपेक्ष पर आधारित हैं। निरपेक्ष के अभाव में स्याद्वाद के सातों परामर्श बिखरे रहते हैं और उनका समन्वय नहीं हो सकता। स्याद्वाद का सिद्धान्त स्याद्वाद के लिए घातक है।

(3.) जैन स्याद्वाद को

पालन में स्वतंत्र नहीं कर पाते।

(4.) स्याद्वाद के चार परामर्शों के बाद तीन परामर्श केवल पहले चार को दोहराने का प्रयास है। कुछ आलोचकों का कहना है कि इसप्रकार सात के स्थान पर सौ परामर्श भी हो सकते हैं।

(5.) डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने बतलाया है कि स्याद्वाद हमें आपेक्षिक अथवा अर्धसत्य का ही ज्ञान प्राप्त कराता है तथा इन्हीं अर्ध सत्यों को पूर्ण सत्य मान लेने की प्रेरणा देता है।

(6.) शंकराचार्य ने चौथे भंग अव्यक्त में दोष दिखलाया है। उनके अनुसार किसी वस्तु के बारे में कुछ कहना भी तो उसे व्यक्त बतलाना है तो इस वचन में विरोध स्पष्ट है। यदि पदार्थ अव्यक्त है तो इनके बारे में कुछ भी कथन नहीं किया जा सकता।

इसप्रकार जैन दर्शन में 'स्याद्वाद' और 'सप्तभंगीनय' का यही स्वरूप है। स्याद्वाद सिद्धान्त से यह स्पष्ट है कि जैनों की दृष्टि कितनी उदार है। जैन अन्यान्य दार्शनिक विचारों को नगण्य नहीं समझते हैं बल्कि अन्य दृष्टियों से उन्हें भी सत्य मानते हैं।